साहित्यिक एवं वैचारिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय नारी का मुक्ति–संघर्ष एवं महिला अधिकारिता के प्रयास

डॉ. विद्यासागर उपाध्याय

भारतीय नारी को मुक्ति संघर्ष की आवश्यकता क्यों पड़ी? किसी को मुक्ति की आवश्यकता तभी होती है जब कोई बन्धन में रहा हो ? भारतीय स्त्री कभी बन्धन में थी, कभी पूज्या रहीं, उसे माँ कहा गया, वह जननी है, अतः सम्माननीय है। उसे बन्धनरहित होना चाहिए। लेकिन, प्रश्न है कि उसे बन्धनग्रस्त किसने कर दिया और क्यों कर दिया ? ये प्रश्न समस्यात्मक हैं क्योंकि इसका सटिक एवं स्पष्ट वस्तुनिष्ठ उत्तर नहीं है। स्त्री की अस्मिता को तय करने वाला प्रमुख कारक है– उसका पुरुष संदर्भ। पुरुष संदर्भ के कारण ही उसे पत्नी माँ, बहन , बेटी या रखैल का दर्जा मिलता है। इसके अलावा उसकी अस्मिता को पहचाने का अगर कोई और रूप सामने आता है तो समाज आज भी उस रूप को पहचानने से इनकार करता है।[1]

भारत में नारी–मुक्ति का अर्थ पश्चिम के अर्थ में पुरूषों की सत्ता से मुक्ति मात्र कभी नहीं रहा। यह सनातन नियम है– नारी के बिना सृष्टि ही संभव नहीं है। सृष्टि का इतना महत्वपूर्ण पक्ष मुक्ति एवं अधिकारिता के लिए संघर्ष करे क्या यह समाज की विडम्बना नहीं है? यह वास्तव में विडम्बना है या इसे विडम्बना बना दिया गया है, यह भी विचारणीय है। कतिपय नारीवादी लेखकों द्वारा यह आरोपित किया गया है कि नारी उपेक्षित है। इस तथ्य पर भी मनौवैज्ञानिक विचार आवश्यक है। हिन्दी साहित्य में स्त्री चित्रण का आदिकाल स्त्री विषयक इसी विडम्बना का शिकार है। आदिकालीन साहित्य में स्त्री चित्रण के जितने भी रूप मिलते हैं, उसमें लगभग सभी स्त्रियों का चित्रण पुरुष संदर्भित रहा हैं। नरपति नाल्ह द्वारा लिखित ''विसलदेव रासो'' की राजमती ही एक ऐसी पात्र है जिसने अपने पति की गर्वोक्ति पर करारा जवाब देते हुए कहा कि ''हे सांभर पति आपके समान अन्य राजा भी हैं। इसमें से एक तो उड़ीसा का राजा ही है जिसके सम्बन्ध में आप मेरे इस कथन पर विश्वास कीजिए अथवा मत कीजिए कि उसके राज्य की खानों से उसी प्रकार हीरे निकलते हैं जैसे आपकी सांभर झील से नमक निकाला जाता है।''[2] राजमती के इस जवाब को सुनकर उसका पति उसे छोड़कर विदेश चला जाता है। राजमती को अपने इस बेबाकीपन की कीमत भी चुकानी पड़ी, क्योंकि उसने उस पुरुषत्ववादी सत्ता के सामने बोलने की गलती की थी, जो स्त्री की इतनी मुखर प्रवृत्ति को बर्दाश्त नहीं कर सकता। बाद में पश्चाताप करते हुए वह ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कहती है, ''हे महेश आपने मुझे स्त्री की योनि में जन्म क्यों दिया ? जन्म देने के लिए और भी बहुत–सी योनियाँ थीं। मुझे स्त्री के रूप में उत्पन्न करने के स्थान पर आप जंगल में नीलगाय के रूप में उत्पन्न करने अथवा घने वन की धौरी गाय के रूप में जन्म देते। यदि आपने मुझे वन–खंड की कोयल बनाया होता तो मैं आम और चम्पा की डाल पर बैठती तथा अंगूर और बिजौरा के फल को खाती हुई आनन्दपूर्वक रहती। यह अबला विरह व्यथा में सूखती जा रही है।''[3] आदिकालीन लौकिक काव्यों में स्त्री चित्रण की जो स्थिति मिलती है, वह भी स्त्री के स्वतन्त्र छवि को नकारने वाली है। जैन, बौद्ध, नाथ एवं सिद्ध साहित्य में स्त्री को विकार से ज्यादा महत्व नहीं दिया गया।

भक्तिकालीन साहित्य भक्ति–भावना से ओत–प्रोत है। ईश्वर की भक्ति ही इस काल के कवियों का मुख्य लक्ष्य था। इस काल के साहित्य में माता, पतिव्रता स्त्री और स्वयं ईश्वर की परिकल्पना कहीं–कहीं स्त्री के रूप में की गयी है, परन्तु यहाँ कहीं यदि स्त्रियाँ भक्त कवियों के साधना क्षेत्र में टकरायीं तो उनकी सर्वत्र आलोचना ही हुई, वह चाहे कबीर के यहाँ ''स्त्री को काली नागिन''[4] ''नरक की खान''[5] या फिर ''संसार की जूठन''[6] के रूप में चित्रित किया गया हो।

रीतिकालीन साहित्य स्त्री चित्रण विषयक संकुचित मानसिकता का काल कहा जाता है क्योंकि इस काल में स्त्री सिर्फ 'भोग्या' और 'वस्तु' बनकर रह गयी। रीति काल में नारी केन्द्र में आयी परन्तु पितृसत्ता के औजार के रूप में न कि स्वतंत्र आत्माभिव्यक्ति के रूप में स्त्री रही, केवल रीति मुक्त कवियों में स्त्रियों के सौन्दर्य का उदात्त चित्रण मिलता है।

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल स्त्री जागरण का उन्मेषकाल है। साहित्यकारों ने स्त्री को केन्द्र में रखकर उसकी समस्याओं और उनके दुःख दर्द को समझने की कोशिश की। स्त्री के लिए कुछ कठोर नैतिक नियमों,, स्वतंत्रता, आर्थिक रूप से उसकी आत्मनिर्भरता तथा उसकी अस्मिता के बारे में विचार होने लगा। भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र, मैथिलीशरण गुप्त आदि ने स्त्री पुरुष समानता एवं स्त्री स्वतंत्रता को अपनी कृतियों में बुलन्द आवाज दिया। गुप्त जी ने हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक उपेक्षित स्त्री पात्र उर्मिला का अपने महाकाव्य 'साकेत' में मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। प्रसाद जी ने स्त्री–पुरुष की समान सत्ता को स्थापित करना चाहा है। कामायनी में प्रसाद जी ने लिखा है कि –'स्त्री पुरुष के सम्बन्धों में समानता का भाव ही समरसता का संचार करता है।[7] ध्रुवस्वामिनी में पहली बार स्त्री स्वयं के बारे में बोलती और सोचती

है।[8] प्रेमचन्द्र का कथा साहित्य नारी उत्थान की दिशा में यथार्थवादी चित्रण है। इन्होंने दलित वर्ग से लेकर उच्च वर्ग की स्त्रियों का यथार्थवादी चित्रण किया है। गोदान में मेहता के माध्यम से प्रेमचन्द्र के स्त्री विषयक विचार सामने आते हैं।[9] अज्ञेय ने अपने कथा साहित्य में स्त्री के ऐसे स्वरूप का चित्रण किया गया है जो अपना ही नहीं बल्कि पुरुषों के भी व्यक्तित्व के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। यह अनायास ही नहीं बल्कि स्त्री चित्रण के प्रति बदली सकारात्मक दृष्टि ही है जब 'शेखर एक जीवनी' का प्रमुख पात्र शेखर कहता है– ''सबसे पहले, तुम शशि इसलिए नहीं कि तुम जीवन में सबसे पहले आयी या कि तुम सबसे ताजी स्मृति हो बल्कि इसलिए कि मेरा होना अनिवार्य रूप से तुम्हारे होने को लेकर है–ठीक वैसे ही जैसे तलवार में धार होना सान की पूर्व–कल्पना है। तुम वह सान नहीं रही हो जिस पर मँज–मँज कर मैं कुछ बना हूँ, जो संसार के आगे खड़ा होने में लज्जित है–लज्जित होने का कोई कारण नहीं जानता''[10]

मानव समाज विविधता का पुंज है। कोई पुरुष अच्छा है तो कोई स्त्री अच्छी है, कोई पुरुष बुरा है तो कोई स्त्री बुरी है। प्रकाश हटता है तो अंधकार आ जाता है और प्रकाश आता है तो अंधकार स्वतः तिरोहित हो जाता है। नारी को पुरुषों द्वारा उत्पीड़ित किया गया और उत्पीड़ित किया जा रहा है, ऐसा कुछ संदभों में ही संभव हो सकता है। सामान्यतः जिस कूल में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री संतुष्ट हेाती है, उसी कूल में सौभाग्य की बृद्धि होती है।

संतुष्टो भार्या भार्ता भार्या भार्ता तथैव च।

अस्मिन् कूले नित्यं सौभाग्यं बर्धते सदा।।

भारत पर मुस्लिम आक्रमणों के दौर में समय पड़ने पर राज्य की बागडोर स्वयं संभालने, युद्ध लड़ने एवं वीरतापूर्वक शत्रु सेना को शिकस्त देने से लेकर सामने पराजय देखकर दुश्मन के हाथ आने से पूर्व स्वयं अपना बलिदान करना, सामूहिक चिंताएँ जलाकर 'जौहर' दिखाना, युद्ध मे पीठ दिखाकर आनेवाले पतियों का अपमान करने तक अनेक वीरगाथाओं से भी इतिहास के पृष्ठ रंगे हुए हैं। रानी दुर्गावती, माता जीजाबाई, पन्ना दाई, वीरमति, देव देवी, पद्मिनी, रानी भवानी, ताराबाई, हाड़ी रानी आदि ने अपने पतियों की रक्षा करने में अपनी जान की परवाह नही की। भारत में अंग्रेजी राज्य का पैर जमाने के अनन्तर 1857 के प्रथम मुक्ति संघर्ष में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, बेगम हजरत महल, रानी तपस्विनी, रानी तुलसीपुर, रानी रामगढ़, रानी जिंदा, जीनत महल। फिरोजशाह की बेगम जमानी बेगम आदि स्त्रियों ने आंग्ल शासन के विरुद्ध विद्रोह का झंडा बुलन्द किया, जान पर खेलकर लड़ी लक्ष्मीबाई शहीद हुई। दक्षिण भारत में रानी चेनम्मा ने रानी लक्ष्मीबाई की भांति स्वतन्त्रता के लिए जान की बाजी लगा दिया। चेनम्मा की याद में दक्षिण में 23 अक्टूबर का दिन 'महिला दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

भारतीय सामाजिक पुनर्जागरण एवं राजनीति चेतना का विकास साथ–साथ हुआ है। भारतीय नारी पुरुष प्रधान व्यवस्थाओं और पतनोन्मुख समाज की स्थितियों में रहने के कारण पिछड़े वर्गों में गिनी जाती थीं, लेकिन वे प्रायः प्रत्येक सुधार आन्दोलन का आधार बनीं। उसे विदेशी दासता, पुरुष समाज की दासता एवं सामाजिक रूढ़ियों की जकड़न के विरुद्ध एक साथ तीन–तीन सामाजिक सुधारों को लेकर चले जिसमें नारी–उत्थान पर विशेष बल दिया गया। मध्यकालीन पतोनोन्मुख भारतीय समाज में पंडितों ने स्त्रियों के लिए उत्तम व्यवस्था माना एवं पर्दे के दैहिक पवित्रता या कौमार्य की रक्षा के लिए उचित मानकर स्त्री शिक्षा को पाप की संज्ञा दी तो कोई आश्चर्य नहीं होता क्योंकि तत्कालीन व्यवस्था में स्त्री का कोई हाथ नहीं था। 1829 ई0 में सती–प्रथा को कानूनन खत्म किया गया। ये दोनों कानून स्त्रियों को मुक्ति दिलाने की दिशा में महत्वपूर्ण थे। इन कानूनों एवं सुधारों की सफलता के लिए स्त्री–शिक्षा आवश्यक है। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का स्त्री शिक्षार्थ प्रयास सराहनीय है। 19 वीं सदी के मध्य प्रथम महिला कॉलेज 'बेथुन कॉलेज' कलकत्ता में स्थापित हुआ। 1870 एवं 1880 के बीच पहली महिला स्नातक कॉलेजों से पढ़कर निकलीं। 1883 में एक महिला पहली बार डॉक्टरी की पढ़ाई करने विदेश गईं एवं 1892 में एक और महिला कानून की पढ़ाई करने ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी गयी। इस काल में स्त्री–शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी और सुधारक महिलाओं में श्रीमती रमाबाई रानाडे, पंडिता रमाबाई, सरला देवी चौधरी, लेडी अबला बोस, श्रीमती पी0के0 रे आदि का नाम प्रमुख रूप से स्मरणीय है।

20 वीं शताब्दी के प्रारंभ में सत्य और ज्ञान की खोज में भारत आनेवाली विदेशी महिला थीं– रामकृष्ण परमहंस व स्वामी विवेकानन्द की शिष्या– मार्ग्रेट नोबल (भगिनी निवेदिता) जिन्होंने बंगाल को अपना कार्यक्षेत्र बनाया और भारतीय स्त्रियों में शिक्षा के माध्यम से जागृति लाने का बीड़ा उठाया। यह शिक्षा केवल जानकारी के लिए न थी, विदेशी शासन की दासता के विरुद्ध जागरण की शिक्षा भी थी। चटगांव के शस्त्र भंडार पर आक्रमण की नायिका प्रीतिलता और अंग्रेज गवर्नर पर गोली चलाने वाली वीना दास उस समय के जाग्रत बंगाल की ही उपज थीं। सिस्टर निवेदिता की प्रसिद्ध पुस्तक 'फुटफाल्स ऑफ इंडियन हिस्ट्री' ने भारतीयों को अपनी संस्कृति पर अभिमान करना सिखाया।

थियोसाफिकल सोसाइटी का आगे चलकर नेतृत्व संभालने वाली श्रीमती एनी बेसेन्ट ने एक आयरिश महिला होकर भी भारत को अपना घर बनाया और यहां रहकर नारी–जागृति व प्रगति का बीड़ा उठाया। उन्होंने माग्रेट नोबल व माग्रेट

कजिंस के साथ मिलकर 'होमरूल लीग' की स्थापना की और कांग्रेस में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। पचास से अधिक पुस्तकों की लेखिका इस विदुषी नारी ने 1917 में कलकत्ता अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष–पद प्राप्त कर देश के राजनीतिक जीवन में महिलाओं का स्थान निर्धारित किया। उनकी अध्यक्षता में एक प्रस्ताव पास कर कांग्रेस ने मांग की कि स्त्रियों को भी पुरुषों के बराबर मताधिकार दिया जाए और उनकी क्षमताओं का परीक्षण किया जाए। भारतीय राजनीति और महिला सुधार–कार्यक्रमों पर श्रीमती एनी बेसेंट का प्रभाव काफी समय तक बना रहा।

इसके बाद महात्मा गांधी की एक अनुयायिनी कुमारी मैडलीन स्लेड, जो बाद में मीरा बेन के नाम से प्रसिद्ध हुईं, सामने आई। 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' के समय वे दो बार जेल गईं। 1931 में गोलमेज सम्मेलन के समय इंग्लैण्ड में वह गांधीजी के साथ थीं। बाद में ब्रिटेन और अमेरिका में उन्होंने भारतीय स्वतत्रता के पक्ष में प्रचार के सिलसिले में दौरा किया। 1942 में वह फिर गिरफ्तार होकर गांधीजी के साथ आगा खां महल में एक लम्बे समय तक रहीं फिर 1944 में उन्होंने गांधीजी के आश्रम की पद्धति पर अपना अलग आश्रम खोल लिया।

स्त्री संगठन और महिला–मताधिकार आंदोलन

1917 में ही मद्रास में श्रीमती एनी माग्रेट कजिंस ने अखिल भारतीय स्तर के एक महिला–संगठन 'इडियन वूमेंस एसोसिएशन' की स्थापना की। श्रीमती एनी बेसेंट व महात्मा गांधी इस संगठन के मुख्य प्रेरक थे। उस समय की महिलाओं कही सारी राजनीतिक गतिविधियां इस संगठन द्वारा ही संचालित हुई। 1917 में ही श्रीमती सरोजनी नायडू के नेतृत्व में महिलाओं का एक शिष्ट–मंडल श्री मांटेग्यू, सेक्रेटरी ऑफ स्टैट फॉर इंडिया से मिला और महिलाओं के लिए मताधिकार की मांग की। राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय भाग लेने का भारतीय स्त्रियों का यह पहला प्रयत्न था और इस जागृति के प्रेरक थे–गांधीजी।

1919 से हुए जलियांवाला बाग हत्याकांड ने आजादी की लड़ाई को जनता की लड़ाई बना दिया। असहयोग आंदोलन जैसे जन–संघर्ष में यद्यपि उस समय महिलाओं को सीधे भाग नहीं लेने दिया गया तो भी रचनात्मक कार्यक्रमों द्वारा स्वतन्त्रता का संदेश घर–घर पहुंचाने में उन्होंने अपना महत्वपूर्ण योग दिया।

1925 में श्रीमती सरोजनी नायडू कांग्रेस अध्यक्ष की गद्दी पर सुशोभित हुईं। यद्यपि इसके पूर्व श्रीमती एनी बेसेंट इस पर पर आसीन हो चुकी थीं, पर भारतीय महिलाओं में यह सम्मान सबसे पहले श्रीमती नायडू को ही मिला। श्रीमती नायडू व उनकी साथिन अन्य महिलाओं ने 'माउंट फोर्ट रिफार्म्स' का विरोध किया, क्योंकि उसमें स्त्रियों को मत देने का अधिकार नहीं प्रदान किया गया था। परन्तु मताधिकार के प्रश्न पर विचार करने का अधिकार प्रांतीय विधानपरिषदों को सौंप दिया गया था। फलस्वरूप खुद प्रांतों में अधिनियम पास कर स्त्रियों को मतदान के सीमित अधिकार व चुनाव लड़ने के अधिकार प्रदान किए गए। 1926 में पहली बार स्त्रियों ने चुनाव में भाग लिया। पर आम चुनाव के बाद 1927 में थोड़ी–सी महिलाएं ही विधान सभाओं में थीं, क्योंकि चुनाव लड़ने के अधिकार कुछ शर्तों पर ही प्रदान किए गए थे।

इसी समय 1927 में 'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन' नाम के एक गैर–राजनीतिक संगठन की स्थापना हुई। इस संगठन का मुख्य काम महिलाओं की सामाजिक और शैक्षणिक स्थिति को उन्नत करना था। पर इसके साथ–साथ उनमें राजनीतिक–चेतना जागृत करने में भी इसका प्रमुख हाथ रहा। 1929 में बाल–विवाह निषेध अधिनियम पास हुआ, जो महिलाओं की सामाजिक स्थिति के सुधार में एक नया मोड था। इसका अर्थ स्त्री–शिक्षा में उन्नति तथा व्यक्तित्व–विकास के अवसरों में वृद्धि था।

नारी अधिकारिता

महिलाओं के विकास एवं उसके अधिकारों के रक्षार्थ संयुक्त राष्ट्र महासभा में 19 दिसम्बर 1979 को महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने के बारे में प्रस्ताव पारित किया जो 3 दिसम्बर 1981 ये प्रभावी हुआ। यह सच है कि महिला अधिकारिता के मामले में आधारभूत बदलाव आया है। महिलाओं के अधिकारों और मानवाधिकार के रूप में अर्न्तराष्ट्रीय मान्यता दी गयी है। महिला अधिकार राजनीतिक कार्यसूची में सर्वोच्च स्थान पर है। लेकिन यह खेद का विषय है कि महिला अधिकारिता वास्तविक रूप में आज भी वह स्थान नहीं ले पा रही है जिसकी वह अधिकारिणी है। जागरूकता एवं प्रयासों के बावजूद महिलाओं की स्थिति दोयम दर्जे की बनी हुई है। प्रौढ़ निरक्षरों में दो तिहाई तथा विश्व के निर्धनों में 70 फीसदी महिलाएँ हैं।

भारतीय संविधान के 73 वें एवं 74 वें संशोधन में महिलाओं के लिए पंचायत एवं शहरी निकायों में प्रतिनिधित्व के लिए एक–तिहाई स्थान का आरक्षण दिया गया। साथ ही इन संस्थाओं में प्रधान एवं अध्यक्ष पद हेतु भी एक तिहाई का आरक्षण भी दिया गया जिससे उन्हें प्रतिनिधित्व ही नहीं बल्कि नेतृत्व करने का भी अवसर प्राप्त हो। स्वतंत्र भारत में महिला शिक्षा की प्रगति हेतु विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–49), माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53), राष्ट्रीय महिला शिक्षा

समिति (1958–59), राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद् (1959–60), भक्त वत्सलम समिति (1963–65), हंस मेहता समिति (1964–65), कोठारी आयोग (1964–66), राष्ट्रीय शिक्षा नीति, फुलरेन गुहा समिति (1974), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1992), जनार्दन रेड्डी समिति (1992), कस्तूरबा गाँधी शिक्षा योजना (1997), मौलाना आजाद राष्ट्रीय छात्रवृत्ति (2003), कस्तूरबा गाँधी विद्यालय योजना (2004), महिला समाख्या कार्यक्रम आदि का संचालन हो रहा है।

वैधानिक एवं संवैधानिक उपाय

संविधान के अनुच्छेद 14 में स्त्री–पुरुष के बीच भेदभाव समाप्त करने और महिलाओं को समाज में बराबरी का हक दिलाने की बात कही गई है। अनुच्छेद 15 में लिंग के आधार पर किसी भी तरह के भेदभाव को रोकने की व्यवस्था की गई है। संविधान के अनुच्छेद 15 (3) में राज्य की महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान करने की छूट दी गई है। अनुच्छेद 16 में सरकारी नौकरियों में महिलाओं को भी पुरुषों के बराबर अवसर दिलाने की बात कही गई है। अनुच्छेद 30 में राज्य से अपेक्षा की गई है कि वह स्त्रियों और पुरुषों को आजीविका के पर्याप्त साधन मुहैया करावें। नागरिक का यह दायित्व होगा कि वह महिलाओं की मान–मर्यादा को कम करने वाला कोई कार्य नहीं करे। संवैधानिक उपबंधों के अलावा भी भारत सरकार ने पिछले दो दशकों में ऐसे अनेक कानून बनाए हैं जिनके माध्यम से महिलाओं को पुरुषों के बराबर लाने का प्रयास किया गया है।

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 जिसमें 1997 में वसीयत के जरिये तथा बिना वसीयत के उत्तराधिकार के मामलों में गैर–हिन्दुओं जैसे ईसाइयों, पारसियों आदि की तरह संशोधन किया गया था। इसमें महिलाओं के उत्तराधिकार के अधिकार को मान्यता नहीं दी गई किंतु हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 पारित किए जाने से देश की स्वतन्त्रता के 58 वर्ष के बाद, महिलाओं का पैतृक संपत्ति पर अधिकार का दावा संभव हो सका।

1997 में उच्चतम न्यायालय ने कामकाजी महिलाओं के बुनियादी अधिकारों का लागू करने से संबंधित एक रिट याचिका की सुनवाई करते हुए एक अहम् निर्णय दिया जिसमें कार्य स्थल पर यौन उत्पीड़न के खिलाफ दिशा निर्देशों की पुष्टि की। इन दिशानिर्देशों को अमल में लेते हुए सरकारी कर्मचारियों तथा अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों की आचरण नियमावली में संशोधन किए गए। साथ ही इन दिशानिर्देशों को निजी क्षेत्र के कर्मचारियों के लिए भी लागू करने के उद्देश्य से औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946 में उचित संशोधन किए गए। संसद ने **घरेलू हिंसा से संरक्षण दिलाने हेतु 2005 में कानून** पारित कर महिलाओं को सभी प्रकार की घरेलू हिंसा, परिवार के सदस्यों या संबंधियों द्वारा किए जाने वाले उत्पीड़न से संरक्षण का प्रावधान किया है।

समाज में महिलाओं के उत्पीड़न, शोषण तथा उनकी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए 1961 में दहेज लेना एवं देना, दोनों को ही दंडनीय अपराध माना गया। 1981 में इस अधिनियम में तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप संशोधन भी हुआ।

कामगार महिलाओं को समाज में आर्थिक समानता के अधिकार के लिये समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 अनुप्रयोग में लागया गया। समान पारिश्रमिक अधिनियम के अंतर्गत भर्ती एवं सेवा शर्तों में महिला और पुरुष का भेदभाव दूर करने का प्रावधान है। कामकाजी महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण हेतु केन्द्र सरकार ने पाँचवें वेतन आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करते हुए कामकाजी महिलाओं के लिये कई ऐसी बातों को नियमों में बदला है, जिनसे उनके अधिकारों को संरक्षण मिल सके। ऐसे विभाग एवं सार्वजनिक संस्थाएं जहाँ महिला कर्मचारियों की संख्या अधिक है, उन जगहों पर बच्चों की देखभाल करने हेतु 'क्रैश' खोलना अनिवार्य बनाया गया है।

भारतीय दण्ड संहिता, में भी महिलाओं के विरुद्ध किए जाने वाले अपराधों की रोकथाम के लिए कठोर दंड की व्यवस्था की गई है। धारा 354 में स्त्री की लज्जा भंग, धारा 366 में अपहरण, धारा 726 में बलात्संग और धारा 498 (क) में स्त्री का अपमान करने को दंडनीय अपराध घोषित किया गया।

महिला अधिकारिता को सुदृढ़ता एवं स्थायित्व प्रदान करने हेतु महिला एवं बाल विकास विभाग तथा राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया।

महिला और बाल विकास विभाग पर निम्नांकित पांच अधिनियमों को लागू करने की जिम्मेदारी है साथ ही विभाग महिला और बाल विकास के क्षेत्र में यूनिसेफ और यूनिफेम जैसी संस्थाओं के साथ अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए भी उत्तरदायी है:

क. अनैतिक व्यापार (निरोधक) अधिनियम, 1956 (1986 में संशोधित)

ख. महिलाओं का अश्लील प्रस्तुतिकरण निरोधक कानून, 1986 (1986 का 80)

ग. दहेज निरोधक कानून, 1961 (1986 में संशोधित)

घ. सती प्रथा विकल्प, दुग्धपान बोतल और शिशु आहार (उत्पादन, आपूर्ति और वितरण अधिनियम, 1992(1922 का 41)

महिला और विकास

समाज में महिलाओं की स्थिति को विकास संबंधी परिप्रेक्ष्य में देखा जाता हैं। महिलाओं के सामाजिक–आर्थिक उत्थान तथा अधिकारिता के लिए विभाग द्वारा महिलाओं से संबंधित अनेक कार्यक्रमों पर कार्यान्वयन किया जा रहा है।

1986–87 से महिलाओं को रोजगार और प्रशिक्षण देने के लिए सहायता देने का कार्यक्रम (स्टेप) केन्द्रीय क्षेत्र की योजना के रूप में शुरू किया गया है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य परंपरागत क्षेत्रों में महिलाओं के कौशल में सुधार तथा परियोजना आधार पर रोजगार उपलब्ध कराकर महिलाहओं की स्थिति में सुधार लाने का प्रयास करना है। इस योजना के अंतर्गत रोजगार के आठ परंपरागत क्षेत्र सम्मिलित किए गए हैं–कृषि, पशुपालन, हस्तशिल्प, मछली पालन, डेरी व्यवसाय, हथकरघा, खादी और ग्रामोद्योग तथा रेशम कीट पालन।

इसके अतिरिक्त स्वयंसिद्धा, स्वशक्ति, स्वावलम्बन, स्वाधार योजनाओं के अंतर्गत महिलाओं का विकास किया जा रहा हे। परिवार परामर्श केन्द्र, अल्पावधि प्रवास केन्द्र, स्वसहायता समूह, कामधेनु योजना, स्वस्थ सखी योजना, अपने बेटी–अपना धन योजना, पंचधारा योजना, देवीरूपक योजना, किशोरी बालिका योजना द्वारा महिलाओं का विकास सरकार के तरफ से किया जा रहा है। भविष्य में नारियां शिक्षा के प्रकाशपुंज से प्रभावित होकर विश्व पटल को आलोकित करती रहेंगी, ऐसा विश्वास हमें है।

संदर्भ–सूची

1. स्त्रीवादी साहित्यिक विमर्श, जगदीश्वर चतुर्वेदी, अनामिका प्रकाशन नयी दिल्ली 2000, पृ0 सं0 1
2. बीसलदेव रास, संपादक–डॉ0 माता प्रसाद गुप्त और श्री आर चन्द्र नाहटा, छन्द सं0 29, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद। वि0 वि0, सं0 2016
3. वही छन्द सं0 81
4. कबीर ग्रन्थावली, संपादक डा0 रामकिशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 पृ0 सं0 214
5. पूर्ववत्, पृ0सं0 216
6. पूर्ववत्, पृ0सं0 217
7. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, इड़ा सर्ग, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद सं0 2003, पृ0सं0 52
8. ध्रुवस्वामिनी, जयशंकर प्रसाद, विद्यासागर, इलाहाबाद 1990, पृष्ठ सं0 14
9. गोदान, प्रेम चन्द्र पृष्ठ सं0 160, 163
10. शेखर एक जीवनी भाग –1, अज्ञेय, पृष्ठ सं0 4

प्राचार्य

आर.डी.एस. पी.जी. कॉलेज कुसांव, भाऊपुर जौनपुर

••••••••••••••••••••